

गीता चिन्तनिका सत्र

अध्याय 4, 5, 6 – 10 जुलाई 2022

गीता चिंतनिका 10 जुलाई 2022 (देवशयनी एकादशी)

https://youtu.be/fHK4lRXlQIY

अध्याय 4 पठन	:	गीताव्रती प्रिया अग्रवाल जी
अध्याय 4 चिंतन	:	गीताव्रती जयश्री ज़िंज़ारे जी
अध्याय 5 पठन	:	गीताव्रती सदिच्छा सालुंके जी
अध्याय 5 चिंतन	:	गीताव्रती अपर्णा होलकुंडकर जी
अध्याय 6 पठन	:	गीताव्रती नंदा पांडिलवार जी
अध्याय 6 चिंतन	:	गीताव्रती रत्ना मोरे जी
सूत्र संचालन	:	श्रीमती ममता गौतम जी
आरम्भिक प्रार्थना	:	गीताव्रती हंसिका काबरा जी
दीप प्रज्ज्वलन	:	श्रीमती विजया मालपाणी जी
समापन प्रार्थना	:	गीताव्रती नींव बल्दवा जी
आभार ज्ञापन	:	गीताव्रती अर्चना इंदाणी जी



अध्याय 4 - ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

भगवान के दिव्यअवतारों एवं उनके जन्म के रहस्य से अध्याय आरम्भ होता है। आगे भगवान अनन्त युगों की कालावधि में संसार से लुप्त हो चुके प्राचीन गूढ़ योग विज्ञान को प्रकट करते हुये कर्म की प्रकृति पर प्रकाश डालते हैं। श्लोक संख्या 6 से 8 तक भगवान अपनी दिव्य शक्ति योगमाया द्वारा संसार में उनके दिव्यावतारों का प्रयोजन बताते हुये, उनके जन्म की दिव्यता को तत्त्व से समझ लेने को ही पुनर्जन्म से छूटने का उपाय बताते हैं।

यथा भाव तथा गति, सकाम कर्मों की सफलता, मनुष्यों के गुणों और कर्मों के अनुसार मेरे द्वारा चार वर्णों की रचना के उपरांत "गहना कर्मणो गतिः" कहते हुये कर्मों के तीन प्रकार कर्म-विकर्म-अकर्म

(अनुमोदित कर्म, वर्जित कर्म और अकर्म) से सम्बंधित सिद्धान्त बतलाते हैं।

श्लोक संख्या 18 से 24 तक सांसारिक मोह से मुक्त, पूर्णतया भगवद्चेतना में तल्लीन, फल की आकांक्षाओं और स्वामित्व की भावना से मुक्त ज्ञानीजन किस प्रकार कर्म करते हैं, यह बताते हुये भगवान ऐसे संतो के प्रत्येक कार्य को यज्ञ एवं प्रत्येक वस्तु को ब्रम्ह का स्वरूप बताते हैं।

श्लोक संख्या 24 से 33 तक विभिन्न यज्ञों का वर्णन करते हुये द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ बताते हैं। ज्ञान के महत्त्व को बताते हुये आगे भगवान कहते हैं कि बड़े से बड़ा पापी भी इस ज्ञान रूपी नौका से संसार सागर को पार कर सकता है। इस संसार में दिव्यज्ञान के समान कुछ भी शुद्ध नहीं है, ज्ञान रूपी अग्नि भौतिक कर्मों से प्राप्त होने वाले समस्त फलों को भस्म कर देती है।

श्रद्धावान पुरुष ही उस परम ज्ञान को प्राप्त कर सकता है अतः तुम्हारे हृदय में अज्ञानतावश जो संदेह उत्पन्न हुये हैं उन्हें ज्ञानरूपी शस्त्र से काट कर, हे भरतवंशी अर्जुन! स्वयं को योग में निष्ठ करो। उठो, खड़े हो, आगे बढ़ो। ऐसा कहकर आगे के अध्याय में बढ़ जाते हैं।

अध्याय 5 - कर्मसंन्यासयोग

इस अध्याय के आरम्भ में कर्मसंन्यास एवं कर्म योग दोनों मार्गों में श्रेष्ठ मार्ग पूछे जाने पर भगवान कर्म योग को उत्तम बताते हुये कहते हैं कि कर्मयोगी जो न तो कोई कामना करते हैं और न ही किसी से घृणा करते हैं उन्हें नित्य संन्यासी ही समझना चाहिये। तत्त्वत: कर्मसंन्यास (सांख्य योग) एवं कर्म योग दोनों ही मार्गों का गंतव्य एक ही है। कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। अतः मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जातें हैं।

विशुद्ध बुद्धि युक्त कर्मयोगी 'मैं कर्ता नहीं हूँ' ऐसा भाव रख कर प्रत्येक कर्म आसक्ति रहित होकर करते हैं तथा पापकर्म से वह उसी प्रकार से निर्लिप्त रहते हैं जिस प्रकार से कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं कर पाता। कर्मयोगी इन्द्रिय-शरीर-मन-बुद्धि के द्वारा केवल अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही कर्म करते हैं।

सर्वव्यापी परमात्मा से न तो कर्तापन का बोध और न ही कर्मों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है, न वह किसी के पापमय या पुण्य कर्मों में स्वयं को लिप्त करते हैं, यह सब प्रकृत्ति के त्रिगुणीमयी शक्ति से सृजित होते





हैं। इसप्रकार कर्मयोग के अतिसूक्ष्म रहस्यों का प्रतिपादन करते हुये भगवान सच्चे आत्मज्ञानी महापुरुष के लक्षण एवं उनके व्यवहार के बारे में श्लोक संख्या 16 से 27 तक विस्तारपूर्वक बताते हुये प्राणायाम द्वारा इन्द्रिय, मन और बुद्धि को संयमित करने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुये अध्याय का समापन करते हैं।

अध्याय 6 - आत्मसंयमयोग

अध्याय 5 पर जारी चर्चा को आगे बढ़ाते हुये भगवान पुनः अर्जुन को कर्मसंन्यास एवं कर्म योग में पुनः कर्म योग का अधिक महत्व बताकर कहते है की कोई भी सांसारिक कामनाओं का त्याग किए बिना संन्यासी नहीं बन सकता यद्यपि वह संसार के सम्मुख योगी का आवरण धारण कर सांसारिक कर्मों से विरक्ति ही क्यों न ले लें। वे मनुष्य जो कर्मफल की कामना से रहित होकर अपने नियत कर्मों का पालन करते हैं वे वास्तव में संन्यासी और योगी होते हैं।

भगवान आगे तीन प्रकार के साधकों (जिज्ञासु योगी, सतत मननशील मुनि एवं योगरूढ़ सिद्ध योगी) का वर्णन करते हुये कर्मयोग की साधना हेतु मार्ग बताते हैं। भली भांति आत्मनियंत्रित मन ही हमारा सबसे बड़ा मित्र एवं वही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। सभी साधनाओं का द्वार मन के नियंत्रण से ही खुलता है। श्लोक संख्या 10 से 20 तक योग के मार्ग में आगे बढ़ने वाले साधकों हेतु साधना की पद्धति का उल्लेख करते हुये कहते हैं कि मन को भौतिक जगत से हटाकर योगाभ्यास के द्वारा स्थिर करने के उपरांत योगी ऐसे शुद्ध मन द्वारा आत्म-तत्त्व को देख सकता है। और आंतरिक आनन्द में मगन हो सकता है। इस तरह से सदा परमात्मा में लगाता हुआ मुझमें सम्यक् स्थितिवाला स्थिर शुद्ध मन परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। योग में चरम आनन्द की यह अवस्था समाधि कहलाती है, इसे पाने के बाद कुछ भी श्रेष्ठ पाने की इच्छा नहीं रहती तथा इसमें स्थित मनुष्य परम सत्य के पथ से कभी विपथ नहीं होता।

योग साधना द्वारा प्राप्त समाधि अवस्था का वर्णन करते हुये, मन पर अंकुश लगाने के उपाय बताते हुये आगे श्लोक संख्या 20 से 32 तक भगवान ऐसे सिद्ध पुरुषों के लक्षणों का वर्णन करते हुये बताते हैं कि निश्चयात्मक बुद्धि द्वारा सदा परमात्म चिंतन में लगा हुआ पापरहित योगी सुखपूर्वक ब्रह्मप्राप्ति रुपी अत्यन्त सुख को प्राप्त हो जाता है तथा उसे सर्वत्र ईश्वर ही ईश्वर के दर्शन होते हैं।

मन की साधना के रहस्य को कठिन जानकर अर्जुन कौतूहलपूर्वक भगवान से बोल पड़ते हैं कि अत्यंत






ही चञ्चल, प्रमथनशील, दृढ़ (जिद्दी) और बलवान् मन का निग्रह करना मैं वायु की तरह अत्यन्त कठिन मानता हूँ। जिस पर भगवान सतत अभ्यास एवं वैराग्य के योग द्वारा मन पर भी विजय प्राप्त करने का मंत्र देते हैं।

अध्याय के अंतिम 10 श्लोकों (श्लोक संख्या 37 से 47 तक) में भगवान योग मार्ग से भ्रष्ट साधकों के बारे में अर्जुन को बताते हुये कहते हैं कि हे पार्थ ! शुभ कर्म करने वाले पुरुष का, न तो इस लोक में और न ही परलोक में ही नाश होता है। सकामभाव वाले तपस्वियों, ज्ञानियों से और कर्मियों से भी निष्काम भाव वाला सदा मुझमें ही स्थिर बुद्धिवाला योगी श्रेष्ठ है। अतः जो सदैव मुझ में तल्लीन और अगाध श्रद्धा से मेरी भक्ति में निमग्न रहते हैं उन्हें ही मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। ऐसा कहकर भगवान अर्जुन को भी योगी बनने को कहते हैं।

अध्याय 3 – कर्मयोग

अध्याय के नामानुरुप ही इस अध्याय में कर्म की आवश्यकता, कर्म की प्रकृति एवं प्रकार (कर्तव्यकर्म, निष्कामयज्ञ कर्म, पाप कर्म) इत्यादि पर योगेश्वर भगवान कृष्ण ने प्रकाश डाला है। कर्म के प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुरुप ही संसार में तीन प्रकार के मनुष्यों का दर्शन इस अध्याय में होता है;

आत्मलीन तत्त्वज्ञानी महापुरुषों : जो प्रबुद्ध और पूर्णतया आत्म संतुष्ट होते हैं, उनके लिए कोई नियत कर्तव्य नहीं होता।

ईश्वर भक्त साधक : आध्यात्मिक मनोवृत्ति वाले बुद्धिमान मनुष्य जिन्हें नियमित अनासक्त कर्तव्य कर्म करने हेतु उपदेश दिया गया है।

अज्ञानी जीवात्मा : जो लोग फल की आसक्ति की कामना से कर्म करते हैं एवं कर्मबंधनो में फंसते हैं।

कर्म के महत्त्व पर बल देते हुये भगवान बताते हैं कि श्रेष्ठ मनुष्यों को सदा ही लोककल्याण एवं प्रेरणा हेतु राजा जनक एवं स्वयं श्री कृष्ण की भांति कर्म योग करते रहना चाहिये अन्यथा समाज में अव्यवस्था फ़ैल जायेगी। जीवात्मा स्वयं को कर्ता समझता है, यद्यपि सम्पूर्ण कार्य प्रकृति के तीन गुणों से प्रेरित होते हैं। अतृप्त कामना रूपी ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। आत्मा को लौकिक बुद्धि से श्रेष्ठ जानकर अपनी इन्द्रिय, मन और बुद्धि पर संयमन करके आत्मज्ञान द्वारा कामरूपी दुर्जेय शत्रु पर विजय पाने के उत्तम ज्ञान के साथ अध्याय समाप्त होता है।

अध्याय 7, 8, 9 – 24 जुलाई 2022

गीता चिंतनिका 24 जुलाई 2022 (कामिका एकादशी)

https://youtu.be/B6_tZsXz4nQ

अध्याय 7 पठन	:	गीताव्रती पार्वती कड जी
अध्याय 7 चिंतन	:	गीताव्रती अश्विनी जोशी जी
अध्याय 8 पठन	:	गीताव्रती वर्षा पोलावर जी
अध्याय 8 चिंतन	:	गीताव्रती दीप्ती म्हापसेकर जी
अध्याय 9 पठन	:	गीताव्रती हेमा लड्ढा जी
अध्याय 9 चिंतन	:	गीताव्रती श्रवणी नाइक जी
सूत्र संचालन	:	श्रीमती मृदुला असावा जी
आरम्भिक प्रार्थना	:	गीताव्रती सिद्धि मोडक जी
दीप प्रज्ज्वलन	:	गीताव्रती चेतना नारायण जी
समापन प्रार्थना	:	गीताव्रती प्रिशा लारा जी
आभार ज्ञापन	:	गीताव्रती डॉ. तृप्ति केनी जी



अध्याय 7 - ज्ञानविज्ञानयोग

आत्मसाधना एवं समाधि का सारा रहस्य खोलकर भगवान अर्जुन को स्वयं को पूर्ण रूपेण ज्ञान एवं विज्ञान सहित जान लेने हेतु उपदेश देते हैं, जिस ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अन्य कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। हजारो मनुष्यों में से कोई बिरला ही सिद्धि को प्राप्त करता है एवं उन सिद्ध पुरुषों में भी कोई विशेष योगी ही ईश्वर को प्राप्त कर पाता है।

तत्पश्चात् श्लोक संख्या 4 से 11 तक भगवान संसार की रचना के सम्बन्ध में बताते हुये कहते हैं कि परमात्मा ही सबके कारण हैं एवं अपनी जड़ (अपरा प्रकृति = निकृष्ट, जड और परिवर्तनशील) एवं चेतन (परा प्रकृति= श्रेष्ठ, चेतन और अपरिवर्तनशील) प्रकृति के साथ मिलकर सृष्टि की रचना करते

हैं। अर्जुन को जड़ और चेतन का भेद स्पष्ट करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण प्रथम प्रकृति के आठ भागों (अष्टधा प्रकृति = आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पंचमहाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकार) को बताते हैं। साथ ही विभिन्न सांसारिक रचनाओं का अवलम्बन लेकर इन परा एवं अपरा में भेद को समझाते हैं।

श्लोक संख्या 12 से 14 तक भगवान अपनी त्रिगुणात्मक दैवीय योगमाया शक्ति का वर्णन करते हैं जिससे मोहित होकर सारा संसार ईश्वर के नित्य और अविनाशी स्वरुप को जान पाने में असमर्थ रहता है। केवल वही जो भगवान की सच्ची शरणागति ग्रहण करते हैं इनसे तर पाते हैं।

श्लोक संख्या 15 एवं 16 में क्रमश: चार-चार प्रकार के लोगों का वर्गीकरण किया गया है - 1) जो ईश्वर भक्ति से विमुख रह जाते हैं, 2) जो ईश्वर की भक्ति करते हैं। श्लोक संख्या 17 से 19 तक अनन्य भाव से ईश्वर भक्ति में तल्लीन महापुरुषों के लक्षण बताये हैं। इसके विपरीत ईश्वर में अश्रद्धा रखने वालों के सम्बन्ध में (श्लोक संख्या 19 से 25 तक) बताते हुये कहते हैं कि मैं सभी के लिये प्रकट नहीं हूँ क्योंकि सब मेरी अंतरंग शक्ति 'योगमाया' द्वारा आच्छादित रहते हैं।

अंतिम के 5 श्लोकों में भगवान सार प्रकट करते हुये कहते हैं कि भगवान सर्वज्ञ हैं तथा वह सभी प्राणियों का भूत, वर्तमान और भविष्य जानते हैं। जिन व्यक्तियों के पाप नष्ट हो गये हैं, जो मोह के द्वन्द्वों से मुक्त हो गये हैं, ऐसे लोग दृढ़ संकल्प के साथ मेरी पूजा करते हैं और अंतकाल में अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के सहित मुझे ही प्राप्त होते हैं।

अध्याय 8 - अक्षरब्रह्मयोग

आध्यात्मिक यात्रा का अत्यंत ही महत्वपूर्ण पड़ाव है अध्याय 8 एवं इसके विषय, क्योंकि सभी अध्यायों में लगभग जीवन को उत्तम रीती से व्यतीत करने की ही चर्चा हुयी है किन्तु यहां पर भगवान मृत्यु की बात करते हैं एवं जीवन मरण से जुड़े कुछ बहुत ही गूढ़ ताने-बाने का अनावरण करते हैं। जिनका उपनिषदों में विस्तार से उल्लेख किया गया है। आठवें अध्याय की पृष्ठ भूमि भी अन्य अध्यायों की तरह ही पूर्व के अध्यायों के अंतिम श्लोकों से आरम्भ होती है जिसमें भगवान ने कुछ शब्दों का उल्लेख किया है जिसके संबंध में ही अर्जुन के प्रश्नो के उत्तर देते हुये 'ब्रह्म', 'अध्यात्म', 'अधिभूत', 'अधिदैव' इत्यादि अध्यात्म सम्बन्धित शब्दों की व्याख्या करते है।

श्लोक संख्या 5 से 10 तक भगवान अंतिम समय में शरीर त्यागने के क्षण पर स्मरण का महत्त्व बताते हुये कहते हैं कि अभ्यासयोग से युक्त और अन्यका चिन्तन न करने वाले चित्त से परम दिव्य पुरुष का चिन्तन करता हुआ (शरीर छोड़नेवाला मनुष्य) उसी को प्राप्त हो जाता है।

आगे के श्लोकों में भगवान काल गणना के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक बताते हैं। साथ ही अपने परमधाम को प्राप्त करने के साधनों का भी वर्णन करते हैं जिसे प्राप्त करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता।

अंत में श्रीकृष्ण कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण एवं दक्षिणायन के सम्बन्ध में बताते हुये कहते हैं कि इन दोनों मार्गों को जानने वाला कोई भी योगी मोहित नहीं होता और ऐसा योगी सभी प्रकार के वर्णित पुण्यफलों का भी अतिक्रमण करके आदिस्थान परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। अतः हे अर्जुन ! तुम भी ऐसे ही योगी बनो।

अध्याय 9 – राजविद्याराजगुह्ययोग

"गुह्यतमं" शब्द भगवान ने 3 जगह प्रयोग किया है जिसमें 9 अध्याय में प्रथम बार प्रयुक्त करते हुये समूचे ब्रह्माण्ड की रचना एवं दिव्य ईश्वरीय शक्तियों के रहस्य का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं - यह सम्पूर्ण जगत् मुझ (परमात्मा) के अव्यक्त स्वरूप से व्याप्त है; संसार के प्रत्येक भूतमात्र मुझमें स्थित है, परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूं। दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्यमन वाले महात्मा लोग ही मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का जनक और सर्वव्यापक अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं। प्रभु श्लोक 16 से 19 तक अपनी सर्वव्यापकता एवं उसमें निहित अपनी शक्ति का वर्णन करते हैं।

श्लोक संख्या 20 से 25 तक अनेक प्रकार के सकाम यज्ञ कर्मों का वर्णन करते हुये भगवान बताते हैं कि सकाम कर्मों का फल क्षणिक होता है एवं इनके पुण्य भोगने के पश्चात् मनुष्य पुनः पृथ्वीलोक में जन्म लेता है तथा यह यात्रा लगातार ऐसे ही चलती रहती है। इसके विपरीत मेरी अनन्य भक्ति भाव से ईश्वर में लीन रहने वाले निष्काम भक्तों के योग एवं क्षेम का वहन मैं स्वयं करता हूँ।

श्लोक संख्या 26 से 34 अर्थात् अध्याय के अंत तक भगवान भक्ति योग के महत्त्वपूर्ण सूत्रों का उद्घाटन करते हुये कहते हैं कि किसी पदार्थ अथवा वेदोक्त कर्मकांड से भी अधिक प्रिय भक्त के हृदय के शुद्धभाव हैं। ऐसे अनन्य श्रद्धा एवं भक्तिभाव से अर्पित किये गये पत्र, पुष्प, फल या जल भी वह सहर्ष स्वीकार करते हैं। अंततः भगवान अपनी सम दृष्टि का परिचय देते हुये बताते हैं कि अनन्य भाव वाला दुष्ट प्रवृत्ति का अधम मनुष्य भी साधु के समान ही ईश्वर के परमपद परमधाम को प्राप्त कर सकता है। अत्यंत महत्त्वपूर्ण घोषणा के साथ भगवान अध्याय का अंत करते हैं और कहते हैं - हे अर्जुन ! तू सदैव मेरा चिन्तन कर, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर। इस प्रकार से अपने मन और शरीर को मुझे समर्पित करने से तुम निश्चित रूप से मुझको प्राप्त करोगे।

इसी प्रकार चिन्तनिका के अन्य सत्र भी संपन्न हुये -

गीता चिन्तनिका सत्र –

अध्याय 10, 11, 12 – 8 अगस्त 2022
https://youtu.be/Qx5o7_TxDeY

अध्याय 13, 14, 15 – 23 अगस्त 2022
https://youtu.be/4Mm2mFQn6K4